ओ३म

'महर्षि दयानन्द द्वारा आद्य राजर्षि मनु के कुछ हितकारी उपदेशों का सत्यार्थ प्रकाश में प्रस्तुतिकरण'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

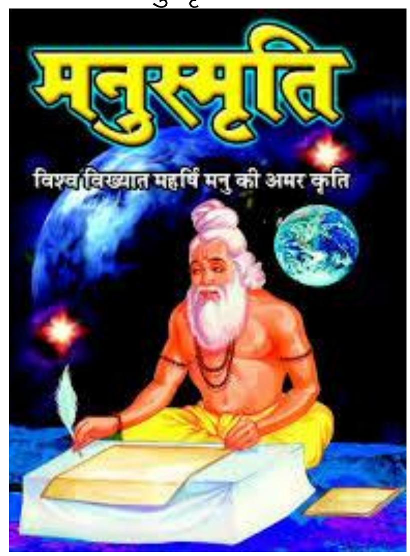

वेद सर्वप्राचीन ग्रन्थ हैं। वेदों के बाद अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में मनुस्मृति का नाम आता है। सौभाग्य से वैदिक साहित्य के शत्रु जिन्होंने हमारे तक्षशिला एवं नालन्दा व अन्य पुस्तकालयें को अग्नि को समर्पित कर नष्ट किया, इन्हें नष्ट नहीं कर पाये। ईश्वर की यह महती कृपा आर्य जाति के प्रति दिखाई देती है। इसके लिए हमारे वह पूर्वज महापुरूष हमारी श्रद्धा व आभार के पात्र हैं जिन्होंने दुर्दिनों में इनकी रक्षा कर हम तक पहुंचाया है। मध्यकाल में हमारे पौराणिक विचार के पूर्वजों ने मनुस्मुति से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए इसमें अनेक प्रक्षेप किये जिससे इसका स्वरूप वह नहीं रहा जो महर्षि मनु, उनके बाद महाभारत काल पर्यन्त व बाद के कुछ वर्षों तक था। महाभारत काल के बाद यह प्रक्षेप व परिवर्तन किये गये। ईश्वर की कृपा ही कह सकते हैं कि प्रक्षेपकर्त्ताओं ने मनुस्मृति से श्लोकों को निकाला नहीं परन्तु अपनी अपनी मान्यताओं के श्लोक बनाकर ही बीच–बीच में उसमें डाल दिये जिससे लोग उन प्रक्षिप्त श्लोकों पर भी विश्वास करने लगे। महाभारत काल के बाद भारत में मुद्रण व्यवस्था विद्यमान न होने के कारण सभी ग्रन्थ भोजपत्रों आदि पर हाथ से लिखे जाते थे। बहुत सीमित प्रतियां किसी ग्रन्थ की होती थी। अतः एक प्रति में प्रक्षेप हो जाने पर उसकी जो प्रतियां अर्थात प्रतिकृतियां किसी विद्वान व उसके शिष्यों द्वारा होती थीं उसमें वह प्रक्षेप हुआ करते थे। **लिपिकर्त्ता भी अपनी मनमानी करते रहे होंगे, इसका अनुमान इसी बात से लगता है कि महर्षि दयानन्द जी ने अपना प्रथम मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश पं. चन्द्रशेखर को बोलकर लिखाया था। इस लेखक ने महर्षि दयानन्द जी की जो बातें उसके विचारों व मान्यताओं के विपरीत थी उन्हें चुपचाप बदल दिया जिसका ज्ञान महर्षि दयानन्द को तब हुआ जब वह ग्रन्थ छप कर पाठकों के पास पहुंच गया। प्रेसकर्मी भी सत्यार्थप्रकाश के बदलने के दोषी रहे हैं। वह भी कम्पोज करते समय जहां उन्होंने जो ठीक लगा, स्वेच्छाचारिता पूर्वक गुपचुप परिवर्तन कर डाला। बाद में महर्षि दयानन्द को इसके लिए विज्ञापन प्रकाशित कर प्रचारित करने पड़े और सत्यार्थप्रकाश का नया पुनरीक्षित व संशोधित संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। यदि किसी कारण ग्रन्थ लिखने व प्रकाशित होने के साथ उनकी मृत्यु हो जाती तो अनर्थ हो जाता। लोग प्रक्षेपों को ही मूल पाठ समझने लगते। ऐसा ही मनु जी के ग्रन्थ मनुस्मृति में भी मध्यकाल में स्वार्थी पण्डित विद्वानों ने किया।** महर्षि दयानन्द ने अपनी अनुसंधान व सत्य के ग्रहण की मनोवृत्ति से मनुजी के प्रत्येक शब्द व श्लोक की परीक्षा की और केवल सत्य पाठों व श्लोकों को ही स्वीकार किया। आज के इस लेख में महर्षि दयानन्द जी द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मृति के श्लोको का जो हिन्दी अनुवाद वा पाठ प्रस्तुत किया गया है, ऐसे कुछ स्थलों को पाठकों के स्वाध्याय लाभ हेतु प्रस्तुत कर रहे हैं।

महर्षि लिखते हैं कि **धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरूषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रूचि आदि आचार और इन से विपरीत अनाचार कहाता है** उसका उल्लेख वह मनुस्मृति के श्लोकों का अनुवाद कर प्रस्तुत कर रहे हैं। पाठक महर्षि दयानन्द के शब्दों पर कृपया ध्यान दें। आज से 141 वर्ष पूर्व अज्ञान में डूबे भारत के लोगों को कितनी महत्वपूर्ण बातें वह बता रहे हैं। यदि यह ज्ञान महाभारत काल के बाद रहा होता तो संसार में केवल एक वैदिक मत ही विद्यमान रहता, हम गुलाम न होते, कहीं मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, बालविवाह, अस्पर्शयता वा सामाजिक विषमता, मृतक श्राद्ध आदि जैसी कुरीतियां समाज में न होती। आगे महर्षि

दयानन्द मनुजी के वचनों को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर रहें **जो संसार में पहली बार हिन्दी प्रेमियों को उनकी ओर से भेंट प्रस्तुत की गई है।** वह लिखते हैं कि **मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिस का सेवन राग–द्वेषरहित विद्वान लोग नित्य करें, जिस को हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जानें, वहीं धर्म माननीय और करणीय है।** दूसरे उपदेश में वह कहते हैं कि **इस संसार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि वेदार्थज्ञान और वेदोक्तकर्म, ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं।** जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ (इच्छारहित) और निष्काम हूं वा हो जाऊं तो वह कभी नही हो सकता क्योंकि **सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्याभाषणादि व्रत, यम–नियमरूपी धर्म आदि संकल्प (वा इच्छा) ही से बनते हैं। वह कहते हैं कि जो–जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं। जो इच्छा न हो तो आंख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता। इसलिये सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरूषों का आचार और जिस–जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिस में न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो ! जब कोई मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उस के आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है (इसे परमात्मा उत्पन्न कराता है) इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं है। मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरूषों का आचार अर्थात् आचरण व व्यवहार, अपने आत्मा के अविरूद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति–प्रमाण से स्वावत्मानुकूल धर्म में प्रवेश करें क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद से अविरूद्ध स्मृत्युक्त घर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है।** यहां मरने के पश्चात सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होने का जो उल्लेख है वह यह है कि वह पुनर्जन्म लेकर इस जन्म से अधिक श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करता है या उसका मोक्ष हो जाता है। यह भी ज्ञातव्य है कि श्रुति वेद को कहते हैं और स्मृति धर्मशास्त्र अर्थात् मनुस्मृति को कहते हैं। इन दोनों ग्रन्थों से सब कर्तव्य और अकर्तव्यों का निश्चय करना चाहिये। मनु जी कहते हैं कि जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे उस को श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें क्योंकि **जो वेद की निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है।** यह भी ज्ञातव्य है कि मनुस्मृति के विधानों का प्रयोग महाभारतकाल वा उससे कुछ शताब्दी वर्ष पूर्व तक संसार में होता चला आया है, उसका अनुमान किया जाता है क्योंकि तब मनुस्मृति के तुल्य व इतर अन्य कोई विधान नहीं था। महर्षि दयानन्द मनुस्मृति की शिक्षा के आधार पर सत्यार्थप्रकाश में एक श्लोक को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरूषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरूद्ध प्रियाचरण, ये चार धर्म के लक्षण हैं अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है। यहां यह भी बता दें कि मनुस्मृति के यह विधान वेदानुकूल होने से आज भी प्रमाण हैं और यह आज भी प्रासंगिक एवं व्यवहारिक है। धर्म विषयक यह जानना सभी के लिए महत्वपूर्ण है कि **जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषयसेवा में फंसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म को जानने की इच्छा करे उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है।** इसका अर्थ है धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद से बढ़कर संसार में कोई ग्रन्थ या विचारधारा नहीं है। महर्षि दयानन्द बताते हैं कि सब मनुष्यों को उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि (गर्भाधान आदि) संस्कार करें जो इस जन्म वा परजन्म में पवित्र करने वाले हैं।

महर्षि दयानन्द मनुस्मृति के आधार पर कहते हैं कि मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त का हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं, उन को रोकने में प्रयत्न करें जैसे घोड़ों को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है। इस प्रकार अपनी सभी इन्द्रियों को अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटा के धर्म मार्ग में सदा चलाया करें क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इन को जीत कर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता है वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है। इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये। जो अजितेन्द्रिय पुरूष हैं उसको **'विप्रदुष्ट'** कहते हैं। उस के करने से न वेद ज्ञान, न त्याग, न यज्ञ, न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिकजनों को सिद्ध होते हैं। राजर्षि मनु व महर्षि दयानन्द कहते हैं कि इसलिये पांच कर्म, पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहार विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे।

जितेन्द्रिय पुरूष वा मनुष्य वह होता है जो स्तुति सुन के हर्ष और निन्दा सुन के शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्ट रूप देख के अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्ध में रूचि और दुर्गन्ध में अरूचि नहीं करता है। महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में मनुष्य में इन गुणों व लक्षणों को सत्य सिद्ध कर दिखाया। उनके शिष्यों ने भी उनके इन गुणों का ग्रहण व धारण कर समाज में प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत किये। आज समाज व देश सहित सभी मत–धर्मों में ऐसे लोगों का मिलना अति दुष्कर है। सभी लोग बातें तो बड़ी करते हैं परन्तु उनका व्यक्ति जीवन व चरित्र इसके सर्वथा विपरीत ही देखने को मिलता है।

अन्त में महर्षि दयानन्द को प्रिय महर्षि मनु के कुछ और वचनों को प्रस्तुत कर इस लेख को विराम देते हैं। वह लिखते हैं कि एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या, ये पांच मान्य के स्थान है। **परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं क्यांकि चाहे सौ वर्ष का भी हो परन्तु जे विद्या विज्ञानरहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये।** क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं। वह कहते हैं कि अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता। किन्तु ऋषि महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है, वही वृद्ध पुरूष कहाता है। ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता हैं। महर्षि मनु के इन सभी वचनों जिनका समर्थन महर्षि दयानन्द ने किया है, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कहाने व मानने वालों को विचार करना चाहिये। इससे यह अनुमान होता है कि आज के समाज में ब्राह्मण व क्षत्रियादि कोई नहीं है क्योंकि यह सभी वेद एवं वैदिक शास्त्रों के ज्ञान से रहित व आचरण से अपरिचित व हीन हैं।

महर्षि दयानन्द के जीवनकल्याण विषयक सर्वोत्तम विचारों को जानने के लिए हम प्रत्येक पाठक व व्यक्ति को सत्यार्थप्रकाश का राग–द्वेष–आग्रह–हठ–स्वार्थ से ऊपर उठकर अध्ययन करने का निवेदन करते हैं। हमने अपने अध्ययन में यह पाया है कि संसार में सत्यार्थ प्रकाश से बढ़कर जीवन के कल्याण की शिक्षा देने वाला अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121